अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 34, अंक - 1
Vol. - 34, Issue - 1

जनवरी-मार्च 2022
January-March 2022

षभ जन्मभूमि (अयोध्या) में निर्मित जिन मन्दिर एवं प्राचीन चरण चिन्ह (विवरण - पृ.८)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

वर्ष-34, अंक-1, जनवरी-मार्च 2022, 57-66

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
ISSN 0971-9024

अयोध्या, इक्ष्वाकु और आदि तीर्थंकर ऋषभदेव

■ शैलेन्द्र कुमार जैन*

सारांश

अयोध्या को जैन परम्परा में शाश्वत तीर्थ होने का गौरव प्राप्त है । यह वर्तमान काल के 5 तीर्थंकरों की जन्मभूमि है । विगत 2-3 दशकों में जैन समाज की वरिष्ठतम् साध्वी गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि ***श्री ज्ञानमती माताजी*** *की प्रेरणा से सभी जन्मभूमियों एवं रायगंज-अयोध्या स्थित बड़ी मूर्ति परिसर का योजनाबद्ध विकास किया जा रहा है, जो जैन संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । अन्य भारतीय संस्कृतियों (वैदिक एवं बौद्ध) में भी अयोध्या को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । वैदिक परम्परा के अनेक सन्दर्भों के आधार पर अयोध्या नगरी, ऋषभदेव एवं इक्ष्वाकु वंश के महत्त्व एवं सर्व मान्यता की चर्चा प्रस्तुत आलेख में की गई है ।*

- सम्पादक

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है जिसका समर्थन सिंधु सभ्यता के पुरातत्त्व और वैदिक साहित्य से होता है । भारत विश्व में आदि काल से ही ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र था । यजुर्वेद में अपने देश की संस्कृति को विश्व की प्रथम संस्कृति कहा गया है।[1] ज्ञातव्य है कि इसका प्रवर्तन भोग भूमि को कर्मभूमि के रूप में परिवर्तित कर तीर्थंकर ऋषभदेव ने अयोध्या में ही किया था । जैसा भागवत पुराण एवं महापुराणकार के उल्लेखों से स्पष्ट है । भविष्य दृष्टा मानव के आदि जनक मनु महाराज ने ऋषभदेव को लक्षित कर यह लिखा होगा । इस देश में एक अग्रजन्मा-आदिदेव ऋषभ होंगे-जो सारे संसार को चरित्र की शिक्षा प्रदान करेंगे ।[2] देवताओं में सर्वप्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुए । वे विश्व के कर्ताः असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या के संप्रदाता थे, इसीलिए तीनों भुवनों के रक्षक थे । उन्होंने समस्त विद्याओं में प्रतिष्ठित ब्रह्मविद्या (अध्यात्म विद्या) अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व-भरत (यहाँ अथर्व शब्द भरत के पर्याय के रूप में लिया है) के निमित्त कही ।[3] जैन ग्रन्थों के अनुसार-ऋषभदेव ने अपने 100 पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र भरत को अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्र, वृषभसेन को संगीत, अनन्त विजय को चित्र, विश्वकर्मा को वास्तु एवं बाहुबली को कामशास्त्र और आयुर्वेद का ज्ञान दिया । उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को ब्राह्मी लिपि और सुन्दरी को अंक लिपि का अभ्यास कराया । पुरुषों को 72 और स्त्रियों को 64 कलाओं का ज्ञान दिया ।

पाषाण विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान एच.डी. संकालिया के अनुसार-यदि आधुनिक पुरातत्त्व मनुष्य के संस्कार के स्तरों का वर्णन करें तो नाभिराय या उनके पुत्र श्री ऋषभदेव का युग कृषि-काल कहलाएगा जो कि पाषाणयुग के बाद आता है और संभवतः इसीलिए ऋषभदेव कृषि के प्रथम उपदेष्टा कहे जाते हैं, जिन्होंने मनुष्य को सभ्य बनाया । इसका समर्थन श्री के.बी.फिरोदिया (भू.पू. स्पीकर विधानसभा, बम्बई) ने भी किया है – **"भगवान ऋषभदेव मानवता के पहले नियन्ता थे । जिन्होंने भौतिक संसार में संस्कृति और सभ्यता के बीजों को बोया था । संसार उनके प्रति चिरऋणी है ।"** सुप्रसिद्ध गांधीवादी चिन्तक, काका साहेब कालेलकर का यह निष्कर्ष नितान्त ही उचित है –

* अध्यक्ष - श्री आदिनाथ मेमोरियल ट्रस्ट, C/o, श्री पॉचूलाल जैन पेट्रोल पम्प, डालीगंज मेन रोड, लखनऊ, मो.: 70078 03935
...ail.com

"हिन्दू समाज को संस्कारी और सभ्य बनाने में ऋषभदेव का बड़ा भारी हिस्सा था। कहा जाता है कि विवाह-व्यवस्था, पाकशास्त्र, गणित, लेखन आदि संस्कृति के बीज ऋषभदेव ने समाज में बोये। अगर यों कहें तो भी चलेगा कि यह सब करके और अन्त में उसका त्याग करके ऋषभदेव ने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों का आचरण करके दिखाया।[4]

भगवान ऋषभदेव का व्यक्तित्व सभी प्रकार की परिपूर्णता का वह सुमेरु है जिससे एक ओर वैदिक ज्ञान-विज्ञान की भागीरथी प्रवाहमान होती है तो उसी से दूसरी ओर श्रमण परम्परा की सरयू का उद्गम होता है। ये दोनों परम्परायें एक-दूसरे की पूरक हैं। वे दोनों भारतीय संस्कृति के दो दिव्यनेत्रों के समान हैं। इन दोनों दृष्टियों की दुगधकुल्या में स्नान किये बिना भारतीय संस्कृति के आत्म तत्त्व की सम्यक् अवगति नहीं हो सकती। **भगवान ऋषभदेव भारतीय धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान विग्रह हैं।**[5] जहाँ श्रमण संस्कृति तप-त्याग एवं ध्यान साधना प्रधान रही है, वहाँ ब्राह्मण संस्कृति यज्ञ-याग मूलक एवं कर्मकाण्डात्मक रही है। हम श्रमण संस्कृति को आध्यात्मिक एवं निवृत्तिपरक अर्थात् संन्यासमूलक भी कह सकते हैं, जबकि ब्राह्मण संस्कृति को सामाजिक एवं प्रवृत्तिमूलक कहा जा सकता है। इन दोनों संस्कृतियों का मूल आधार तो मानव-प्रकृति में निहित वासना और विवेक अथवा भोग और योग (संयम) के तत्त्व ही है। वैदिक एवं श्रमण[6] परम्परा के एकत्व, पारस्परिक आदान-प्रदान, सामाजिक चिन्तन एवं प्रभाव, धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताएँ तथा उनके विरोध एवं अनुगमन आदि प्रवृत्तियों को रेखांकित करने वाले अनेक पक्ष हैं। इनमें 'आर्यत्व' के गुणों वाली तथा कोसल से सम्बद्ध इक्ष्वाकु परम्परा महत्त्वपूर्ण है जिनके संदर्भ वैदिक, जैन, बौद्ध एवं लोक परम्पराओं में प्रामाणिकता, तथ्यपरक तथा ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक भूमिका के साथ मिलते हैं।

चित्र सं. 1 - निर्मोही अखाड़ा अयोध्या से प्राप्त ऋषभदेव की केशसहित सुंदर प्रतिमा, 7वीं सदी ई.की.

डॉ. सूर्यकान्त बाली अपनी पुस्तक **भारतगाथा** में लिखते हैं कि - हमारे देश में ऐसे विराट व्यक्तित्व दुर्लभ हैं, जो एक से अधिक परम्पराओं में भी समान रूप से मान्य और पूज्य हों। भगवान ऋषभदेव उन दुर्लभ महापुरुषों में से एक हैं और संभवतः सबसे पुराने। जहाँ जैन परम्परा उन्हें अपने तीर्थंकरों की श्रेणी में पहला मानती है, वहीं भागवत् परम्परा में उन्हें विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माना गया है। जैनमत में ऋषभदेव को प्रथम राजा माना जाता है, तो भागवत परम्परा में उन्हें मनु से पांचवी पीढ़ी का कहा गया है। दोनों परम्परायें उन्हें इक्ष्वाकुंवशी और कोसलराज मानती है और समान रूप से कहती है कि ऋषभदेव को जन्म से ही विलक्षण सामुद्रिक चिन्ह प्राप्त थे

और वे शैशवकाल से ही योगविद्या में प्रवीण होने लगे थे। अगर ऋषभदेव को स्वीकार ही नहीं किया गया तो जाहिर है कि भगवान ऋषभ ने एक ऐसी अद्भुत परम्परा का प्रवर्तन किया, जिसे पुराणों ही नहीं, ऋग्वेद में भी यत्र-तत्र स्मरण किया गया है। ऋग्वेद में एक शब्द मिलता है **वृषभ**। विशेषण के रूप में इसका अर्थ है श्रेष्ठ, परन्तु शब्द ऋषभ हो या वृषभ, उसमें उच्चारण की सुविधा के कारण कोई अंतर नहीं पड़ता और बात एक ही है, इसलिए ऋग्वेद में वृषभ या ऋषभ के श्रेष्ठ राजा और दार्शनिक होने के अद्भुत कर्म का लेख एकाधिक बार आया है। एक स्थान पर तो ऋषभदेव का सम्बन्ध कृषि और गोपालन के सन्दर्भ में मिलता है, जो जाहिर है कि जैन परम्परा को ही पुष्ट कर रहा है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जैन परम्परा के सभी तीर्थंकरों में अकेले भगवान ऋषभदेव को केशी, अर्थात् सिर के लम्बे बालों से युक्त होने के कारण केशी कहा गया है। ऐसे ही उनके बिखरे हुए केश मूर्तियों में प्रदर्शित हैं, जो ऋषभ की प्राचीनता का अकाट्य प्रमाण हैं। (देखें चित्र-1)

भारतीय संस्कृति की इक्ष्वाकु परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा प्रख्यात रही है। ऋग्वेद के अनुसार इक्ष्वाकु राजा की संरक्षकता में मनुष्यों के पाँचों कुलों के राजा (आर्य एवं अनार्य) सुख एवं समृद्धि प्राप्त कर रहे थे। अथर्ववेद में इक्ष्वाकुओं को वेद पूर्व कहा गया। हरिवंश पुराण के अनुसार सबसे प्रथम इक्ष्वाकु वंश चला उसके बाद सूर्य, चन्द्र, कुरु, उग्र आदि वंश प्रचलित हुए। इसी सर्व प्रधान और प्रथम वंश में भरत हुये जिनसे भरत (सूर्य) वंश चला।[7] ब्रह्माण्ड पुराण में इक्ष्वाकु परम्परा का इतिहास वर्णित हैं। जिसमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इक्ष्वाकुवंशी महादेव ऋषभ ने उत्तमक्षमादि दशलक्षणमय धर्म का उपदेश केवलज्ञान प्राप्ति के लिए दिया था। मनु स्मृति में धर्म के दसलक्षण बताये हैं। इसी प्रकार जैनग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में 10 धर्मों का वर्णन है। विश्व के अन्य धर्मों में भी दस धर्मों की मान्यता मिलती है। धर्म का परिचय ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम जगत से कराया अतः भागवत पुराण तथा में इन्हें स्वयं धर्म अर्थात धर्म का स्वरूप कहा इसका समर्थन अग्निपुराण से भी होता है जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि इनके पिता नाभिराय के काल में जरा (रोग), मृत्यु का भय एवं धर्म और अधर्म भी नहीं था। आत्मा में गुणों के विकास का नाम ही धर्म है।

वैदिक जैन एवं बौद्ध तीनों परम्पराएँ (कोसल), अयोध्या से संबद्ध रही हैं। तीनों धर्मों की धार्मिक प्रक्रियाओं को यदि पृथक् कर दें तो ज्ञात होता है कि इक्ष्वाकु परम्परा तीनों धर्मों की धुरी हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ अथवा ऋषभनाथ के साथ अयोध्या एवं इक्ष्वाकु अभिधान का घनिष्ठ सम्बन्ध था, जिस वंश का सम्बन्ध भगवान ऋषभनाथ के साथ था और जिस वंश के प्रवर्तन का मूल कारण ऋषभदेव के जीवन सम्बन्धी दो घटनाएँ रही थीं (1) प्रथम तो यह कि कर्मयुग के प्रवर्तन के प्रारम्भ काल में ऋषभदेव ने तत्कालीन जनता को स्वयं उगे हुए इक्षुदण्ड (गन्ना, ईंख) को निचोड़कर उससे रस निकालना और अपनी क्षुधा-पिपासा शान्त करना सिखाया था। (2) दूसरे, यह कि साढ़े तेरह माह पश्चात् भगवान ऋषभदेव को सर्वप्रथम इक्षुरस का आहार मिला था, जनता उन्हें श्रद्धावश इक्ष्वाकु कहने लगी और साथ ही उनके वंश को इक्ष्वाकुवंश। अयोध्या पर इसी वंश की 112 पीढ़ियों ने शासन किया इसी वंश में राम जन्मे एवं यही पुरु वंश एवं सूर्य वंश कहलाया।[9] जैन परम्परा में नाभिराय के साथ ऋषभ और भरत को भी मनु कहा गया है। मनुओं की संतान परम्परा ही मानव, मानुस कहलाई।

विचारणीय तथ्य यह है कि जब वैदिक एवं श्रमण दोनों ही संस्कृतियों के पृष्ठभूमि में एक सशक्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना विद्यमान थी तो इनका पृथकत्व कैसे हुआ? और समानांतर किन्तु परस्पर आदान-प्रदान के साथ इनका विकास कैसे हुआ? वास्तविकता तो यह है कि दोनों परम्पराओं का पृथकत्व केवल

प्रवृत्तिमार्गी तथा केवल निवृत्तिमार्गी दृष्टि से नहीं किया जा सकता है । दोनों परम्पराओं में इन तत्त्वों की विद्यमानता थी क्योंकि 'आर्यत्व' की जीवन दृष्टि के साथ इनका विकास हुआ था । यह आर्य जीवन दृष्टि इक्ष्वाकु परम्परा की देन है क्योंकि इक्ष्वाकुओं का सम्बोधन ही 'आर्य' था । इक्ष्वाकुओं के इतिवृत्त को निरूपित करने वाले वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं संस्कृत साहित्य में इक्ष्वाकु 'आर्य' अभिधान से ही अभिहित है । यहाँ 'आर्य' शब्दार्थिकी पर अलग-अलग अध्ययन पद्धतियों के आधार पर विचार और विवाद हो सकता है । किन्तु इतना स्पष्ट है कि 'आर्य' शब्द श्रेष्ठता का बोधक है । 'आर्य' शब्द के साथ श्रेष्ठता का यह भाव किन परिस्थितियों मे जुड़ा, इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है । इसके बावजूद यह तो स्पष्ट ही है कि मनुष्य के भीतर जो 'ईश्वरत्व' है वहीं 'आर्यत्व' है । 'ईश्वरत्व' के वृद्ध होने पर ही मनुष्य 'आर्य' बनता है जैसा कि भारतीय परम्परा मानती है । यथार्थ तो यह है कि समूचे वैदिक वाङ्मय शब्दकोशों आदि में 'आर्य' शब्द विचार एवं आचार की श्रेष्ठता का बोधक है । इस आर्यत्व में सत्य, धर्म, दिव्य, पवित्र, पूर्णतेज, यशस्विता आदि वे सभी गुण आते है जो धर्म के लक्षणों में परिगणति है । सत्य, दृढ़, प्रतिज्ञा, वचन का पालन, धैर्य, बुद्धि, जीवलोक की रक्षा, प्रजावत्सलता, नैष्ठिकता आदि विशिष्ट 'आर्यत्व' के गुणों के लिए इक्ष्वाकु प्रसिद्ध हैं । 'आर्य' संबोधन एवं 'आर्यत्व' की जीवन शैली इक्ष्वाकुओं के साथ सम्बद्ध रही है । भास ने प्रतिनाटकम् में भरत-देवकुलिक संवाद के प्रसंग में देवकुलिक के मुख से कहलाया है कि **'आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम्''** । अर्थात् निश्चित रूप से 'आर्य इक्ष्वाकु कुलक्रम है ।[10]

चार तीर्थंकर नामक पुस्तक में पं. सुखलाल संघवी लिखते है कि ऋषभ ही इक्ष्वाकु कहे गये, जैसा जैन परम्परा स्वीकार करती है । पौराणिक परम्परा में जो मनु इक्ष्वाकु हैं, वही जैन परम्परा में चौदहवें कुलकर नाभिराय के पुत्र ऋषभ (इक्ष्वाकु) माने गये । इसीलिए जैनों की इक्ष्वाकु परम्परा वैदिक एवं पौराणिक परम्परा के इक्ष्वाकु से अधिक सशक्त एवं श्रद्धेय रही है । जैन शास्त्रों के अनुसार ऋषभदेव अर्थात् जैन इक्ष्वाकु जैन एवं जैनेत्तर दोनों ही परम्पराओं में उपास्य एवं मान्य हैं ।

जैनों के श्वेताम्बर आगम साहित्य जैसे-स्थानांग, ज्ञाताधर्मकथा, कल्पसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, कल्पसूत्रवृत्ति एवं निर्युक्ति, बृहत्कल्पभाष्य आदि में इक्खाग (इक्ष्वाकु) **इक्खागभूमि अयोज्झ** (इक्ष्वाकुभूमि अयोध्या), इक्खागकुल (इक्ष्वाकुकुल), इक्खागवंस (इक्ष्वाकुवंश) की व्यापक चर्चाएँ हैं । इसी प्रसंग में ऋषभ (उसभ) द्वारा शक्क (इन्द्र) से इक्षु (गन्ना) प्राप्त करने के कारण वंश के 'इक्ष्वाकु' नामकरण की भी चर्चा है । इन विवरणों के आधार पर जैनों की इक्ष्वाकु परम्परा का ज्ञान होता है । इतना ही नहीं प्रथम पाँच तीर्थंकरों ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, ग्यारहवें श्रेयांसनाथ तथा चौदहवें अनन्तनाथ का जन्म इक्ष्वाकुकुल में ही बताया गया है । वैशाली के लिच्छविकुल में उत्पन्न चौबीसवें तीर्थंकर का भी संबंध इक्ष्वाकुओं से था क्योंकि वज्जिसंघ में सम्मिलित आठ गणतंत्रों 'अट्ठकुलिप' (वज्जि, लिच्छवि, विदेह, ज्ञातृक, उग्र, भोग, कौरव तथा ऐक्ष्वाकु) में वैशाली के ऐक्ष्वाकु भी परिगणित है । इसीलिए जैन तीर्थंकरों की राजवंशीय परम्परा भी इक्ष्वाकुओं से ही सम्बद्ध रही है । इस परम्परा का उत्स कोसल ही रहा है । बौद्ध साहित्य में भी शाक्यों के पूर्वजों, सुधोधन और बुद्ध को इक्ष्वाकु कुल का ही स्वीकार किया है । इसी राजवंशीय परम्परा में चन्द्रगुप्त मौर्य एवं खारवेल का भी नाम उल्लेखनीय है ।[11]

ऋग्वेद में ऋषभ का उल्लेख एक क्षत्रिय राजा के रूप में मिलता है और साथ ही अर्हन्त संज्ञा भी प्राप्त होती है। यजुर्वेद में **ॐ नमोअर्हतो ऋषभो**, अथर्ववेद में अहिंसक वृत्तियों के प्रथम राजा आदि रूपों में उल्लेख मिलते किया गया है। इसी प्रकार ताण्ड्य ब्राह्मण - **ऋषभों वा पशूनामधिपति** । (14/2/5) शतपथ ब्राह्मण- **ऋषभा वा पशूनां प्रजापति** में ऋषभ को पशुपति कहा गया है। महाभारत के शान्तिपर्व में महायोगी, अर्हत कहा है। **ऋषभादि महायोगी नामाचारे । इष्टाय अर्हतारयों मोहिता** । हनुमान नाटक से भी यही सिद्ध है– **'अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः'** । सन्त विनोबा भावे जी का कहना है वेद वचनों में **'अर्हन इदं विश्वसंभवस'** आदि वचन पाये जाते हैं। अर्हन् शब्द जैन धर्म के अधिनायक भगवान ऋषभदेव को ही सूचित करता है। इसी प्रकार पौराणिक साहित्य में लिंगपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, शिवपुराण एवं विष्णुपुराण में चक्रवर्ती भरत (जिनके नाम पर यह देश अजनाभवर्ष से भारतवर्ष हुआ) के पिता के रूप में भी ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है। भागवतपुराण पंचम स्कन्ध से भी इसका समर्थन होता है।[12]

डॉ. एम. चिन्तामणि ने **ऋषभदेव और आदि शैव धर्म** में लिखा है कि प्राचीन आदि-वेद जो अहिंसा पर आधारित था, इक्ष्वाकुवंशी भगवान ऋषभ द्वारा उपदिष्ट हुआ था। ऋग्वेद की रचना के पहले से भी ऋषभ प्रणीत अहिंसा धर्म अस्तित्व में था। मोहनजोदाड़ों और हड़प्पा के पुरातत्त्व से इस मान्यता का समर्थन होता है। दिगम्बर खड्गासन योगियों की आकृतियाँ वहां मिलती हैं, जिन्हें विद्वत्जन तत्कालीन मानवों के उपास्य बताते है। संभवतः यह योगी भ. ऋषभ जैनों के प्रथम तीर्थंकर ही हैं, जिन्होंने अहिंसा धर्म का प्रचार और योगचर्यामय तप की साधना की थी। सिंधु उपात्यका के पुरातत्त्व से सिद्ध है कि यह ऋषभ प्रणीत अहिंसा धर्म निस्संदेह ऋग्वेद की ऋचाओं के रचना काल से पहले ही प्रचलित हो चुका था। ऋषभ मतानुयायी उन आर्यों से प्राचीन आर्य थे, जो बाद में भारत आये।[13] उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर दृढ़तापूर्वक यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का आविर्भाव ऋग्वेद के संगायन से पूर्व अवश्य हो चुका था। इस दृष्टि से ऋग्वेद का समय सात हजार ईसा पूर्व से भी अधिक पहले का सिद्ध होता है।[14] ऋषभ या वृषभ भारतीय इतिहास के शिखर पुरुष है, उनके जीवन सम्बन्धी अनुशीलन से जो तथ्य अभी तक प्रकाश में आये है वह न केवल उन्हें भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में बल्कि विश्व मानव विकास की प्रथम कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।[15]

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के पूर्व महानिदेशक डॉ. मुनीशचन्द्र जोशी ने अपने लेख में लिखा है कि – भारतीय परम्पराओं के अनुसार ऋषभनाथ एक प्रारम्भिक राजवंश में उद्भूत युगपुरुष थे उनका सम्बन्ध अयोध्या नामक नगर से था। अथर्ववेद में हिरण्यमय कोश से आवृत्त देवताओं की नगरी अयोध्या की महिमा वर्णित है। जैन परम्परानुसार ऋषभदेव जब माता कें गर्भ में आये तब हिरण्य की वर्षा हुई थी और उसी समय अयोध्या हिरण्यमय कोष से आवृत्त हो गयी। इसे गरुण पुराण में सात मोक्षदॉयनी पुरियों में प्रथम माना है। रामायण में उल्लेख है कि बहुत वर्षों से जनशून्य (शूनी पड़ी) रमणीक अयोध्या नगरी राजा ऋषभ के समय बसी।[16] इस नगरी का निर्माण स्वयं मनु ने कराया था। जैन परम्परा में भी अयोध्या को आदि तीर्थ कहा गया है एवं इसका निर्माण मनु (नाभिराय) ने कराया था। आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में **'जादो हु अवज्झए उसहों'** आदि गाथाओं द्वारा सूचित किया है कि अयोध्या नगरी में ऋषभदेव का जन्म हुआ था। अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ आदि पाँच तीर्थंकरों का आविर्भाव अयोध्या में ही हुआ था।

भगवान ऋषभदेव के निर्वाणोत्सव में भरत चक्रवर्ती ने अयोध्या में एक उत्तुंग सिंह-निषद्या निर्माण कराई थी तथा नगर के चारों महाद्वारों पर 24 तीर्थंकरों की निज-निज शरीर प्रमाण प्रतिमाएँ स्थापित की तथा स्तूप एवं मूर्ति कला का विकास भी इस नगर में सर्वप्रथम विकसित हुआ।[17] भरत के उपरान्त सुभौम, सगर, मघवा आदि कई अन्य चक्रवर्ती सम्राट भी अयोध्या में हुए और महाराज रामचन्द्र एवं लक्ष्मण जैसे शलाकापुरुषों को जन्म देने का श्रेय भी अयोध्या को ही है। रामचन्द्र दीक्षा लेने के बाद पद्ममुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए और अर्हत् परमेश्वर बनकर मोक्ष गये। महारानी सीता की गणना जैन परम्परा की सोलह आदर्श महासतियों में है। यज्ञों में पशुबलि के प्रश्न को लेकर नारद और पर्वत के बीच राजा वसु की राजसभा में होने वाला विवाद भी एक अनुश्रुति के अनुसार अयोध्या में ही हुआ था। राजनर्त्तकी बुद्धषेणा और प्रीतंकर एवं विचित्रमति नामक मुनियों की कक्षा का तथा अन्य अनेक जैन पुराण-कथाओं का घटनास्थल यह नगर रहा। अंतिम तीर्थंकर महावीर अपने एक पूर्व भव में अयोध्या पधारे, यहाँ के सुभूमिभाग उद्यान में उन्होंने मुमुक्षुओं को धर्मामृत पान कराया तथा कोटिवर्ष के राजा चिलाति को जिनदीक्षा दी थी। उनके नवम गणधर अचलभव का जन्म भी अयोध्या में ही हुआ था।

महावीर निर्वाण के लगभग एक सौ वर्ष पश्चात् मगधनरेश नन्दिवर्धन ने इस नगर में मणिपर्वत नामक उत्तुंग जैन स्तूप बनवाया था, जिसकी स्थिति वर्तमान मणिपर्वत टीला सूचित करता था, मौर्य सम्राट सम्प्रति और वीर विक्रमादित्य ने इस क्षेत्र के पुराने जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार एवं नवीनों का निर्माण कराया था। गुजरात नरेश कुमारपाल चौलुक्य (सोलंकी) ने भी यहाँ जिनमंदिर बनवाये बताये जाते हैं। दसवी-ग्यारहवीं शती ई. में यहाँ जैन धर्मावलम्बी श्रीवास्तव कायस्थ राजाओं का शासन था, जिन्होंने सैयद सालार मसउद गाजी को, जो अवध प्रान्त पर आक्रमण करने वाला संभवतया सर्व प्रथम मुसलमान था, वीरतापूर्वक लड़कर खदेड़ भगाया था। सन् 1194 ई. के लगभग दिल्ली विजेता मुहम्मद गोरी के भाई मखदमूशाह जूरन गोरी ने अयोध्या पर आक्रमण किया और ऋषभदेव जन्म स्थान के विशाल जिनमंदिर को ध्वस्त करके उसके स्थान पर मस्जिद बना दी, किन्तु स्वयं भी युद्ध में मारा गया और उसी स्थान पर दफनाया गया जो अब शाहजूरन का टीला कहलाता है। उसी टीले पर, मस्जिद के पीछे की ओर, आदिनाथ का एक छोटा सा जिनमंदिर तो थोड़े समय पश्चात ही पुनः बन गया किन्तु चिरकाल तक उसका चढ़ावा अयोध्या के बकसरिया टोले में रहने वाले शाहजूरन के वंशज ही लेते हैं।[18] (देखें चित्र सं.-2)

चित्र सं. 2 - शाह जूरण भगवान आदिनाथ का प्राचीन जन्म स्थान अयोध्या

ऐसी भी किवंदती है कि अवध के बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के समय में मणिपर्वत से नंदयुग का एक शिलालेख प्राप्त हुआ था, जो अब अप्राप्त है । मणिपर्वत के दक्षिण दिशा-स्थित एक कृषिक्षेत्र (खेत) से अयोध्या के शुंगकालीन प्रथम शती ई. पू. के राजा धनदेव का संस्कृत शिलालेख भी मिला है । सम्भवतः एतद्विषयक एक अभिलेख अयोध्या के रामकथा-संग्रहालय या डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध वि.वि. फैजाबाद में सुरक्षित है । सन् 1865 में अयोध्या के सन्निकट प्राचीन सिक्कों का एक जखीरा मिला था, जिसमें तीन प्रकार के प्राचीन सिक्के थे, जो स्थानीय नरेशों के प्रतीत होते है । दूसरी-पहली ई.पू. के सिक्कों में एक ओर वृषभ या हस्ती, दूसरी तरफ चैत्यवृक्ष, स्वस्तिक, नन्द्यावर्तादि आदि जैन चिन्ह है । तीसरी कोटि के सिक्के दूसरी-चौथी सती. ई.वी. के स्थानीय मित्र वंशी राजाओं के प्रतीत होते है । ये भी वृषभ, नन्दिपादादि प्रतीकों से समलंकृत थे । मध्यकाल के प्रायः दसवी सदी से लेकर 19वीं सदी के कई जैन प्रतिमा-लेख शिलालेख भी उपलब्ध हुए थे ।[19] चौथी-पाँचवी सदी ई.पू. नन्दों के बाद अयोध्या इक्ष्वाकुवंशी चन्द्रगुप्त मौर्य के अधिकार में थी । उसी काल के वहाँ हनुमानगढ़ी के पास खुले क्षेत्र में खुदाई में प्राप्त चौथी सती ईसा पूर्व की जिन केवली की मूर्ति (चित्र सं.3)

चित्र सं. 3 - हनुमानगढ़ी के पास से प्राप्त जिन प्रतिमा ई. पूर्व 4 सदी

भारत में प्राप्त प्राचीनतम जिन प्रतिमा एवं सिक्कों (2 सदी ई.पू.) पर वृषभ, हाथी के चिन्ह और राजाओं के नाम में (धनदेव, विशाखदेव) देव शब्द का प्रयोग और वृषभ राज चिन्ह (जो सत्ता परिवर्तन पर भी नहीं बदलता था) ऋषभदेव की ऐतिहासिकता का समर्थन करते हैं (देखें चित्र सं.-4)।

चित्र सं. 4 - ईसा पूर्व 2सदी के विशाखदेव के सिक्के जिन पर वृषभ चिन्ह बना होता था ।

सन् 1330 ई. के लगभग जैनाचार्य जिनप्रभसूरि ने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक से फरमान प्राप्त करके संघ सहित अयोध्या तीर्थ की यात्रा की थी । उन्होंने अपने विविध तीर्थकल्प के अन्तर्गत अयोध्यापुरीकल्प में लिखा है कि उस समय वहाँ जन्म लेने वाले पाँचों

तीर्थंकरों के मंदिरों के अतिरिक्त, राजा नाभिराय (ऋषभदेव के पिता) का मंदिर, पार्श्वनाथ की बाड़ी, चक्रेश्वरी (ऋषभदेव की यक्षी) की रत्नमयी प्रतिमा, इसके संग गोमुख यक्ष की मूर्ति, सीताकुंड, सहस्रधारा, स्वर्गद्वार आदि जैनधर्मायतन विद्यमान थे तथा नगर के प्राकार पर मत्तगयंद यक्ष का निवास था, जिसके आगे उस समय भी हाथी नहीं आते थे, जो आते भी थे वे तत्काल-मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे।[20]

चित्र सं. 5 - मणि पर्वत नंदवंश द्वारा स्थापित

1528 ई. में मुगल बादशाह बाबर ने अयोध्या पर आक्रमण करा और अपने सिपेसालार मीर बाकी के द्वारा रामकोट में स्थित राम जन्म स्थान के मंदिर को तोड़ कर मस्जिद बनाई और उपरोक्त जैन मंदिरों में से भी कुछ को तुड़वाया। अकबर व जहाँगीर के शासनकाल में उनकी तटस्थता के कारण या मौन स्वीकृत के चलते जैन एवं वैष्णव मठ एवं मंदिर निर्मित होने लगे थे। आगे औरंगजेब ने उन्हें भी तुड़वा दिये। अतः अधिकांश वैष्णव और जैन परम्परा के मठ एवं मंदिर अवध के नवाबों और ब्रिटिश शासनकाल में बने है। नगर के मुहल्ला कटरा में एक टोंक में एक जैन महात्मा के चरण चिन्ह स्थापित हैं, जिन पर अंकित लेख से विदित होता है कि वहाँ शीतल नाम के दिगम्बर जैन मुनिराज ने समाधिमरण किया था, जिसकी स्मृति में ब्रह्मचारी मानसिंह के पुत्र ने वैशाख सुदी 8 सोमवार, संवत् 1704 के उक्त चरण चिन्हों को प्रतिष्ठापित किया था।[21]

1965 में आचार्यरत्न देशभूषणजी महाराज ने रानी का बाग रायगंज मोहल्ले में 31 फुट ऊँची खड़गासन मनोज्ञ प्रतिमा एक बड़े मंदिर में स्थापित करायी। वर्तमान में जैन धर्म की सर्वोच्च साध्वी **गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** ने शाश्वत तीर्थ अयोध्या में सन् 1993 से 1995 के मध्य बड़ी मूर्ति रायगंज के नाम से विख्यात उपरोक्त जैन मंदिर का जीर्णोद्धार कराया एवं इसी मंदिर परिसर में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर इस तीर्थ का विश्वव्यापी प्रचार किया। 1995 में उत्तर प्रदेश शासन के सहयोग से ऋषभदेव राजकीय उद्यान में 21 फुट पद्मासन की प्रतीमा का निर्माण कराया। इसी क्रम में 2019 में आर्यिका ज्ञानमती माताजी की मंगल प्रेरणा एवं आर्यिका चन्दनामती माताजी के कुशल मार्गदर्शन में स्वस्तिश्री पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति जी ने अयोध्या में पाँच तीर्थंकर भगवन्तों-भगवान् आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ एवं अनन्तनाथ की जन्म कल्याणक भूमियों पर बने अत्यन्त प्राचीन जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराकर वहाँ पर भव्य जिनालयों की स्थापना एवं उनकी अभूतपूर्व पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई।

(इसी में से एक मन्दिर का चित्र मुख पृष्ठ पर अंकित है। - सम्पादक)

इस जीर्णोद्धार कार्य का उल्लेखनीय पक्ष यह है कि पाँचों जन्मभूमियों पर बने प्राचीन चरणचिन्हों को यथावत सुरक्षित रखा गया है एवं शेष परिसर में भव्य जिन मन्दिरों का निर्माण कराया गया है।

सन्दर्भ स्थल –

1. डॉ. करुणा शंकर शुक्ला, सिन्धु सरस्वती लिपि उद्यवाचन एवं परिचय, शंकर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, 2009, पृ. 13
   (साः प्रथमः संस्कृति विश्ववारा-4.47)[1]
2. आचार्य प्रभाकर मिश्र, भारत पितामह आदिदेव ऋषभ, ऋषभ सौरभ, दिल्ली, 1998, पृ.125
   (अथ ह भगवानृषभ देवः स्ववर्ष कर्मक्षेत्र मनुमन्य मानः प्रदर्शित गुरुकुल वासो) - भागवत् पुराण
   (आषाढ़मासबहुलप्रतिपद्‌दिबसे कृती । कृत्वा कृतयुगारम्भं प्रजापत्यमुपेयिवान् ।।) - महापुराण
   ('एतद् देश प्रस्‌तस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिवेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः'। - प्रभाकर मिश्र
3. आचार्य विद्यानन्द, मोहनजोदड़ों जैन परम्परा एवं प्रमाण पृ. 22 टि.19
   ('ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्या सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।' मुण्डकोपनिषद 1.1)
4. श्रीमती कुसुम जैन (सम्पादकीय), णाणसायर (दिल्ली), अरिहंत इन्टरनेशनल, दरींबाकला, ऋषभ अंक, पृ.32
5. कु.चन्द्रप्रकाश सिंह, ऋषभदेव महाकाव्य (प्रकाशक भारत बुक डिपो, लखनऊ), भूमिका
6. डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा, वैदिक एवं श्रमण संस्कृति में इक्ष्वाकु परम्परा, सुमति ज्ञान, (मेरठ), आचार्य शांतिसागर 'छाणी' ग्रन्थ माला, पृ. 299
7. प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार, इक्ष्वाकुवंश-प्रथम चक्रवर्ती भरत, मार्च 20, पृ.33
8. डॉ. सुदीप जैन, वर्धमान-महावीर स्मृति ग्रन्थ, दिल्ली, पृ.278
   "इह वि इक्ष्वाकु-कुलोद्‌भवेन नाभिसुतेन भरूदेब्या नन्दनेन महादेवेन ऋषभेन ऋषभेण धर्मः दस प्रकारो स्वयमेवाचीर्णः केवलज्ञानलाभाच्च प्रवर्तितः ।"[8]
   इक्ष्वाकुः प्रथमं प्रधान मुद्‌गाद्‌ादित्य वंशस्ततः ।। तस्मादेव च सोमवंश इति यस्त्वन्ये कुरूग्रादयः ।
   जैन हरिवंश पुराण, 13/30
9. कुंवरलाल जैन, पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम, दृष्टव्य सूर्य प्रभा, वृषभो भरतेश्च तीर्थचक्र भृतौ मनुः । मनोरपत्यं मानवः, पृ. 321
10. डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा, वैदिक एवं श्रमण संस्कृति में इक्ष्वाकु परम्परा, सुमति ज्ञान, पृ. 303
11. वही, पृ. 301
12. शैलेन्द्र कुमार जैन, अयोध्या के इक्ष्वाकु और आदि तीर्थंकर ऋषभदेव, वैदिक परम्परा में तत्संबंधी साक्ष्य, ISJS Transaction, Dec. 2020, पृ. 32
13. डॉ. एम. चिन्तामणि, ऋषभदेव और आदि शैव धर्म, णाणसायर (दिल्ली), ऋषभ अंक, पृ. 147, 148
14. डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा, वैदिक एवं श्रमण संस्कृति में इक्ष्वाकु परम्परा, सुमति ज्ञान , पृ. 299
15. आई. पी. पाण्डेय, आदि जिन ऋषभ और भारतीय संस्कृति, प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार, महासभा लखनऊ, जुलाई 17, पृ.15
16. शैलेन्द्र कुमार जैन, अयोध्या के इक्ष्वाकु और आदि तीर्थंकर ऋषभदेव, वैदिक परम्परा में तत्संबंधी साक्ष्य, मुम्बई, ISJS Transaction (Delhi), December 2020, पृ. 33
   बलभद्र जैन, भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग-1, मुम्बई, अयोध्यापुरी वर्णन, पृ.156
17. पं. बलभद्र जैन, भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग-1, मुम्बई, अयोध्यापुरी वर्णन, पृ.156
18. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, आदितीर्थ अयोध्या, पृ. 44
19. डॉ. रामानन्द शुक्ला, अयोध्या में जैन परम्परा का उद्‌भव और विकास, अयोध्या शोध संस्थान, लखनऊ, पृ. 77-78
20. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, आदितीर्थ अयोध्या, उ.प्र. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, लखनऊ, 1979, पृ. 45
21. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, आदितीर्थ अयोध्या, पृ. 46

प्राप्त : 26.03.2021
संशोधित : मार्च 2022